ISSN - 2231-1130
वर्ष–सप्तम् ; सितम्बर–2016

'आधा गाँव' उपन्यास में चित्रित आर्थिक जीवन

सच्चिदानन्द*

किसी भी राष्ट्र की सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन की आधारशिला वहाँ की आर्थिक व्यवस्था होती है। सामाजिक कल्याण व आर्थिक विकास प्रत्येक राष्ट्र का अभीष्ट होता है। देश की अर्थनीतियाँ शासन–सत्ता द्वारा निर्धारित की जाती हैं। सुसंगठित राजनीति सशक्त अर्थनीति का मार्ग प्रशस्त करती है।

राही मासूम रज़ा सदैव अपने साहित्य के माध्यम से राष्ट्र की राजनीति एवं अर्थनीति पर चिन्तन करते रहे। आजीवन आर्थिक विषम परिस्थितियों का सामना करने वालों को देखकर लेखक का भावुक हृदय द्रवित हो उठता था, इसलिए लेखक ने देश की आर्थिक व्यवस्था पर अपनी लेखनी के माध्यम से निरंतर चोट की है। उपन्यास साहित्य के माध्यम से लेखक ने आधुनिक अर्थनीति की खामियों को भी उजागर किया है।

भारत एक विकासशील देश है जहाँ निर्धनता है। यद्यपि यहाँ देश को उन्नत बनाने वाले सभी साधन उपलब्ध हैं, फिर भी यहाँ गरीबी है। इसका कारण केवल इतना है कि यहाँ उपलब्ध आर्थिक स्रोतों का सम्यक् उपयोग नहीं हो पा रहा है। सादा जीवन उच्च विचार को प्राथमिकता देने के कारण आर्थिक विकास की ओर ध्यान नहीं दिया जा सका है। देश की आर्थिक स्थिति, वहाँ की प्रचलित व्यवस्था पर सर्वाधिक निर्भर करती है। भारत एक कृषि प्रधान देश है यहाँ की भूमि उपजाऊ है और निवासी भी परिश्रमी हैं, फिर भी उत्पादन की दर बहुत कम है। इसका कारण किसानों की निरक्षरता और अज्ञानता नहीं है, अपितु वे कठिन परिस्थितियाँ हैं जिनमें उन्हें अपना कृषि कर्म करना पड़ता है। ये परिस्थितियाँ एक सीमा तक दैविक आपदा जैसे– सूखा, ओला, पानी, अग्नि के रूप में हैं। इसके अतिरिक्त खाद, सिंचाई, कटाई, आदि कृशकों के लिए कठिन परिस्थितियों का निर्माण करते हैं।

* 128, छोटा चाँदगंज, निरालानगर, लखनऊ।

उत्पादन लागत में वृद्धि, वित्त सम्बन्धी असुविधाएँ, विक्रय की अव्यवस्था तथा मूल्यों के उतार–चढ़ाव से उत्पादन में अपेक्षित लाभ नहीं हो पाता है। भण्डारण के अभाव में किसान अपनी फसल को कम दाम पर बेचने को मजबूर हो जाते हैं।

आधा गाँव राही मासूम रज़ा का सर्वाधिक चर्चित उपन्यास है। 344 पृष्ठों के इस उपन्यास में लेखक ने गंगौली के माध्यम से पूरे देश का चित्र खींचा है। उपन्यास स्वतंत्रता से पूर्व एवं स्वतंत्रता के पश्चात् के भारतीय समाज के सांस्कृतिक सन्दर्भ को प्रस्तुत करता है। गंगौली के आस–पास की सांस्कृतिक गतिविधियों का सूक्ष्म एवं सजीव चित्रण करने के कारण इसे आंचलिक उपन्यास का श्रेय भी प्राप्त है। इस उपन्यास में गंगौली के शिया मुसलमानों की कहानी कही गयी है। हिन्दू और मुस्लिम दोनों समुदायों की आर्थिक जीवन इस उपन्यास में चित्रित है।

राही मासूम रज़ा का 'आधा गाँव' उपन्यास 'वर्ग–संघर्ष' की व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसमें अधिकतर जमींदारी प्रथा का ही चित्रण हुआ है। स्वतंत्रता के बाद जब जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी गयी तब इन छोटे जमींदारों की आर्थिक स्थिति और दयनीय हो गयी। लेखक कहता है–

''इन लोगों के लिए पाकिस्तान बनना या न बनना बेमानी था। लेकिन जमींदारी के खात्में ने इनकी शख्सियतों की बुनियादें हिला दीं। वे घरों से निकले और जब घर ही छूट गया तो गाजीपुर और करॉंची में क्या फर्क।''[1]

'आधा गाँव' के अनेक पात्र जैसे हकीम साहब, अब्बू मियाँ, फुस्सू मियाँ और मौलवी बेदार आदि ऐसे हैं जिन्होंने जमींदारी समाप्त होने पर अपनी आर्थिक जर्जरता को पाकिस्तान से जोड़ दिया है। आर्थिक सुरक्षा की खोज करते हुए हिन्दुस्तानी मुसलमान पाकिस्तान रवाना हो जाते हैं।

सद्दन से बात करते हुए हकीम साहब का दर्द जमींदारी चले जाने के कारण छलक पड़ता है। वे कहते हैं–

''एक ठो बेटा रहा ऊ पाकिस्तान चला गया। एक ठो जमींदारी रही,

ऊको समझो पाकिस्तान चली गयी। अरे जउन चीज हमरे पास ना है, ऊ पाकिस्तान न गयी?हमरे पास रह का गवा है? एक ठो बेवा बेटी, तीन ठो यतीम नवासे, नवासी, एक बहू और उहो बेवा ही है। तीन ठो पोते–पोती, ऊहो को यतीम समझो। कल एक ठो खजाना और मिल गया! सुखरमवा नालिस कर दीहिस..... हमरी समझ में तो भाई, कुछ आता न। नौ परानी का पेट कैसे चलायें।''[2]

कुछ वर्ष पहले हकीम साहब की हकीमी खूब चलती थी। जमींदारी होने के कारण समाज में प्रतिष्ठा भी खूब थी, परन्तु आज परिवार के भरण–पोषण के लिए भी उन्हें संघर्ष करना पड़ रहा है।

जीविका के जो साधन थे वे ज्यादातर लोगों के हाथ से छिन गये। जिन लोगों ने कुछ पूँजी बचा रखी थी उन्होंने छोटा–मोटा व्यवसाय आरम्भ कर दिया। फुस्सू मियाँ की भी हालत यही थी। उन्होंने इमामबाड़े वाले कमरे में जूते की दुकान खोल ली और मिगदाद के आ जाने से उनका व्यापार और ठीक प्रकार चलने लगा–

''मिगदाद के आ जाने से उनके घर की बहुत सी मसायल खत्म हो गयी थी। एक तो गल्ला बहुत आने लगा था। ऊपर का खर्च जूते की इस दुकान से निकल आता था जो उन्होंने इमामबाड़े वाले कमरे में चालू कर दी थी।..... धीरे–धीरे दुकान चल निकली। पहले तो उन्हें ग्राहकों से बात करते शर्म आती थी। ग्राहक भी कैसे, जिनकी पुश्तें उन्हें और उनके बुजुर्गों को सलाम करने में गुजरी थी? वही गाँव के जुलाहे और राकी वही चमार और अहीर।''[3]

वर्ग–संघर्ष का एक उदाहरण परुसराम जो कि जाति से चमार है, जीवन भर मियाँ लोगों की जी हुजूरी करता था लेकिन जब से वह एम0एल0ए0 हो गया वह मियाँ लोगों के बराबर बैठने लगा। उनके साथ हुक्का पानी भी पीने लगा। यथा–

''जब परुसराम आता तो शाम को उसका दरबार लगता। उसका दरबार गाँव का सबसे बड़ा दरबार होता। उसके दरबार में लखपति भी आते

और फाकामस्त सय्यद साहिबान भी। ये लोग कुर्सियों पर बैठते, सिगरेट पीते और रेडियो सुनते। उनसे थोड़ी ही दूर पर गाँव के गरीब–गु–र–बा होते जो पहले की तरह जमीन पर उकड़ू बैठते खैनी खाते और बीड़ी पीते। उनकी किस्मत में जमीन पर ही बैठना लिखा था बस उन्हें यह तस्कीन थी कि उनका एक आदमी मियाँ लोगों की कुर्सी पर बैठता है।''[4]

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय समाज में जो हलचल महसूस हुई उससे लोगों की आर्थिक स्थिति में उतार एवं चढ़ाव दोनों देखने को मिलता है। परुसराम और हकीम साहब इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। लोगों को अवसर मिला कि वे अपनी आर्थिक स्थिति को सुधार कर अपनी सामाजिक स्थिति भी सुदृढ़ कर सकते हैं।

राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में भी इस प्रकार के भ्रष्टाचार के उदाहरण यत्र–तत्र बिखरे हुए हैं। 'आधा गाँव' उपन्यास में पुलिस अधिकारी रिश्वत की लालच में अपराधियों को मुक्त कर देते हैं तथा निरपराधियों को दण्ड देते हुए दिखाए गये हैं। अनवारुल हसन झूठा मुकद्दमा चलाने के लिए थानेदार को घूस देता है–

''नाश्ते के बीच में उसने थानेदार को पाँच सौ रुपये दिये कि कम–से–कम मीर उब्बाद और मौलवी बेदार पर फौजदारी का मुकद्दमा जरूर कायम कर दिया जाय। मगर थानेदार हरनारायण प्रसाद को इसकी परेशानी थी कि उन्हें कोई गवाह नहीं मिल रहा था। फिर भी पाँच सौ की रकम ऐसी मामूली भी नहीं होती कि कोई थानेदार उसे यूँ ही हाथ से निकल जाने दे।''[5]

'आधा गाँव' में दरोगा हरनारायण प्रसाद से जब वारफंड में रुपया जमा कर रहे थे तब वे वार फंड के साथ ही साथ अपने फंड के लिए भी उन्हीं आसामियों से पैसा ऐंठ रहे थे।

''दरोगा जी सँभल गये। क्योंकि उन्होंने तय किया था कि गोबरधन को सिर्फ हजार की रसीद दी जायेगी, वह गोबरधन से जी–ही–जी में खुश हो गये क्योंकि अब हिसाब ठीक हो जायेगा। उन्होंने तय किया कि बार फंड के लिए बीस हजार और अपने फंड के लिए तीस हजार जमा करेंगे।

गोबरधन की रकम से उनके तीस हजार पूरे हो रहे थे और वारफंड भी अट्ठारह हजार तक पहुँच रहा था।''[6]

पुलिस और प्रशासन जो कि समाज की सेवा के लिए बनाये गये हैं, वे अपने कार्यों से विमुख होकर लोगों की सेवा व सुरक्षा के स्थान पर येन–केन प्रकारेण उनका शोषण कर रहे हैं।

बेरोजगारी की समस्या का समस्त सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जीवन एक यांत्रिक प्रक्रिया बन कर रह जाता है। स्वतंत्रता के समय से ही इस यांत्रिक समस्या को साम्प्रदायिक रूप दे दिया गया था। टोपी शुक्ला उपन्यास में राही मासूम रज़ा ने इस समस्या का चित्रण किया है। यथा–

''अगर ये सारे मुसलमान पाकिस्तान भेज दिये जायें तो जो नौकरियाँ इन्हें मिलती हैं वह भी हिन्दुओं को ही मिलेंगी।"

नौकरी।

यह कैसा घिनौना शब्द है!

बात यह है कि दो–चार बार ऐसा हुआ कि जिस जगह के लिए मुन्नी बाबू ने एप्लाई किया वह जगह एक मुसलमान को मिल गयी।

यह नौकरी दोधारी तलवार है। एक तरफ हिन्दुओं को मुसलमानों से काटती है तो दूसरी तरफ मुसलमानों को हिन्दुओं से। हालाँकि बात यह है कि देश नया–नया आज़ाद हुआ है तो क्या उन लड़कों का नौकरियों पर अधिक अधिकार नहीं है जिनके बाप, मामू, दूर के चाचा.... गरज कि किसी भी रिश्तेदार ने आजादी की लड़ाई में हिस्सा लिया था? अगर मैं किसी कमीशन का मेम्बर हूँ तो क्या उनके आने वाली तमाम नौकरियों पर मेरे रिश्तेदार या जाति–बिरादरी वालों का हक ज्यादा नहीं हो जाता?आम लोग तो पागल हैं उनकी समझ में यह छोटी सी बात नहीं आती।''[7]

राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में आर्थिक चेतना के विवेचनोपरान्त निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि लेखक ने अपने समय की लगभग सभी आर्थिक समस्याओं का चित्रण करने में पूर्णतः सफलता पायी है। उपन्यास के पात्रों के एक–एक कथन सरकारी आर्थिक नीतियों पर

कुठाराघात है। ये पात्र हमारे ही जीवन से उठाये गये हैं। इनकी समस्याएँ हमारी ही समस्याएँ लगती हैं। निम्न और मध्यमवर्गीय जीवन आज जिस प्रकार आहत और असंतुष्ट है उसकी सहज परिणति इन उपन्यासों में हुई है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसी पंक्तियाँ आज भी अपना पूर्ण अर्थ देने में असफल हैं।

सन्दर्भ –

1. हिन्दी उपन्यास में वर्ग भावना : प्रेमचन्द युग, प्रताप नारायण टण्डन, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, संस्करण–1956.
2. हिन्दी उपन्यास का विकास, मधुरेश, सुमित प्रकाशन, अलोपी बाग, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण–2008.
3. हिन्दी का गद्य साहित्य, रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी, सप्तम संस्करण–2009.
4. आधा गाँव, राही मासूम रज़ा, राजकमल प्राइवेट प्रकाशन लिमिटेड, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, दसवीं आवृत्ति–2010
5. आधा गाँव, राही मासूम रज़ा, पृ0 307
6. आधा गाँव, राही मासूम रज़ा, 322
7. आधा गाँव, राही मासूम रज़ा, पृ0 325
8. आधा गाँव, राही मासूम रज़ा, 334–335
9. आधा गाँव, राही मासूम रज़ा, पृ0 77
10. आधा गाँव, राही मासूम रज़ा, पृ0 143
11. टोपी शुक्ला, राही मासूम रज़ा, पृ0 69